P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9* December 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

गांधी जी का नैतिक मानववाद एवं ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

पीताम्बर दास
सहायक प्राध्यापक,
दर्शन शास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

मोहनदास कर्मचन्द गांधी जी के सभी विचार भारत की सनातन परम्परा के प्रमुख नैतिक मूल्य सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य एवं रस्किन की पुस्तक 'Unto the Last' से ही निकलते है। उनका प्रमुख सत्याग्रह का विचार सत्य रूपी नैतिक मूल्य एवं रस्किन की पुस्तक से निकलता है। अस्तेय एवं अपरिग्रह से गांधी जी अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त ट्रस्टीशिप को निकालते है और भारत में जनकल्याण के एक नवीन विचार को प्रस्तुत करते है, जिसमें धनाढ्य लोग स्वेच्छा से गरीब जनता की सेवा के लिए अपने अतिरिक्त धन का उपयोग करते हुए दिखाई देते है। ट्रस्टीशिप के विचार से ही प्रभावित होकर गांधी जी के साथ विनोबा भावे जी ने भी भूदान आन्दोलन चलाया जिसके परिणाम स्वरूप बड़े–बड़े जमींदारों ने अपनी आवश्यकता से अधिक भूमि गरीब किसानों एवं लोगों को दान करना प्रारम्भ किया। वर्तमान समय में इस ट्रस्टीशिप के विचार को पुनर्जीवित करने की नितांत आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय के पूंजीपति एवं जमीनदार केवल और केवल अपने अतिरिक्त धन को ही बढ़ाने के लिए प्रयास कर रहे है। गांधी जी की फोटो एवं विचारों को ऐसे धनाढ्य लोग केवल अपने निजी स्वार्थ को पूरा करने के लिए प्रयोग कर रहे है।

मुख्य शब्द : सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, नैतिक, ट्रस्टीशिप, धन, सम्पत्ति, गांधी जी, भूदान, आन्दोलन, विचार, जनकल्याण।

प्रस्तावना

मोहनदास कर्मचन्द गांधी जी के विचारों का अध्ययन करने पर हम पाते है कि गांधी जी के सम्पूर्ण विचार एवं दर्शन भारत के प्राचीन सनातन नैतिक मूल्यों जैस सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य पर आधारित है। गांधी जी ने अपने सभी विचारों एवं आन्दोलनों में इन्हीं नैतिक मूल्यों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है। जैसे गांधी जी सत्य को ही ईश्वर मानते है और अहिंसा को उसे प्राप्त करने का साधन अर्थात् सत्य रूपी ईश्वर साध्य है तथा अहिंसा साधन। अस्तेय रूपी नैतिक मूल्य के द्वारा समाज में व्याप्त चोरी एवं भ्रष्टाचार का निवारण करने का प्रयास करते है। अपरिग्रह रूपी नैतिक मूल्य से ही गांधी जी अपना ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त निकालकर लाते है और इस नैतिक मूल्य को व्यावहारिक रूप देने के लिए वे विनोबा भावे जी के साथ भूदान आन्दोलन भी चलाते है। उपरोक्त सभी नैतिक मूल्यों को व्यावहारिक रूप देने के लिए वे ब्रह्मचर्य को अति आवश्यक मानते है, क्योंकि चारों नैतिक मूल्यों को मानव तभी अपने जीवन में उतार सकता है, जब मानव ब्रह्मचारी हो अर्थात् मानव को अपनी इन्द्रियों अपने नियन्त्रण में रखना क्योंकि यदि मानव अपनी इन्द्रियों अपने नियन्त्रण में नही रख सकता है तो वह सत्य, अहिंसा, अस्तेय एवं अपरिग्रह का भी पालन नही कर सकता। गांधी जी ने इन्हीं नैतिक मूल्यों के आधार पर भारतीय मानव को एक नैतिक मानव के रूप में बदलने के लिए ही अपने बहुमूल्य विचार हमारे सामने प्रस्तुत किये है। इसीलिए गांधी जी के विचारों में नैतिक मानववाद का दर्शन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

साहित्यावलोकन

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन में मैंने निम्नलिखित ग्रन्थों की सहायता ली है जिनमें तत्त्वमसि द्वारा लिखित पुस्तक 'महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त' सबसे महत्वपूर्ण है, यह पुस्तक 'राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, राजघाट, नई दिल्ली–110002 तथा राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2003 में प्रकाशित हुई है। नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित कुछ सामग्री मैने 'ह्रदय नारायण मिश्र एवं जमना प्रसाद अवस्थी' द्वारा लिखित पुस्तक से ली है, यह पुस्तक 'हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़' द्वारा वर्ष 1988 में प्रकाशित हुई है। इनके अलावा अतिमहत्वपूर्ण सामग्री मैने गांधी जी की आत्मकथा' सत्य के प्रयोग' से ली है,

यह आत्मकथा जिसके अनुवादक काशिनाथ त्रिवेदी जी है, वर्ष 2012 में 'सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी द्वारा प्रकाशित है।

शोध पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में गांधी जी के नैतिक दर्शन को नैतिक मानववाद सिद्ध करने का प्रयास करते हुए बताया गया है कि गांधी जी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त नवीन सिद्धान्त न होकर, भारत की प्राचीन नैतिक परम्परा के नैतिक मूल्यो का ही एक वर्तमान दृष्टि से पुनर्निर्माण है। इसी दृष्टि से इस शोध पत्र में गांधी के विचारों की विवेचना करना मेरा प्रमुख उद्देश्य है।

नैतिक मूल्य

इन नैतिक मूल्यों की दृष्टि से मै कह सकता हूँ कि गांधी जी ने अपने ''प्रथम आन्दोलन सत्याग्रह की पृष्ठभूमि में अपनी आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में सबसे महत्वपूर्ण नैतिक मूल्य ब्रह्मचर्य को बताया है।[1] (मो0 क0 गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अनुवादक–काशीनाथ त्रिवेदी, सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–221001, वर्ष–जनवरी, 2012, पृ0सं0 173)। इसके अलावा एक सत्याग्रही की कुछ आवश्यक शर्तें भी गांधी जी ने बतलायी है जो उपरोक्त पाँच नैतिक मूल्यों पर आधारित है जैसे ''ब्रह्मचर्य अर्थात् मन, वचन, कर्म से अपनी इन्द्रियों पर पूर्णतः नियंत्रण करते हुए पारिवारिक जीवन के पूर्ण कर्त्तव्यों को निभाना परन्तु गांधी जी वैवाहिक जीवन के विरोधी नही थे। उनके अनुसार सम्पूर्ण जीवन शक्ति विषयोन्मुख न होकर उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए होनी चाहिए जिससे सत्याग्रही की शारीरिक, नैतिक और अध्यात्मिक शक्ति प्रबल हो। निर्भयता अर्थात् सत्याग्रही को पूर्णतः निर्भीक होकर काम करना चाहिए। वह केवल ईश्वर से ही डरे इसके अलावा किसी से भी भयभीत न हो। श्रम का उपार्जन अर्थात् सत्याग्रही अपने परिश्रम द्वारा अपने जीविकोपार्जन को करते हुए किसी अन्य के श्रम का लाभ न ले क्योंकि गांधी जी ने इसको शोषण माना है। अस्तेय अर्थात् चोरी नही करना। सत्याग्रही को शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक स्तर पर इस नैतिक मूल्य का पालन करना चाहिए। जीवित रहने के लिए भोजन अर्थात् भोजन जीने के लिए करना चाहिए न कि भोजन करने के लिए जीना चाहिए। भोजन स्वाद के लिए नहीं जीवन जीने के लिए है। अतः भोजन सात्विक होना चाहिए। अपरिग्रह अर्थात् सांसारिक पदार्थों को त्याग करना ही अपरिग्रह है। सत्याग्रही को त्यागी प्रवृत्ति का बनकर संचय एवं संग्रह करने से सर्वदा दूर रहना चाहिए। सर्वधर्मसमभाव अर्थात् सत्याग्रही भले ही किसी भी धर्म का अनुयायी हो परन्तु उसे सभी सम्प्रदायों और मतों के प्रति एक समान भाव से रहना चाहिए। भेदभाव रहित जीवन अर्थात् सत्याग्रही का जीवन सदा भेदभाव रहित होना चाहिए क्योंकि मानव मात्र के प्रति सत्याग्रही का निष्पक्ष भाव होना अति आवश्यक है। स्वदेश प्रेम की भावना अर्थात् सत्याग्रही को चाहिए कि स्वदेश में बनी वस्तुओं का ही प्रयोग करे और भले ही उसे परेशानी या कष्ट का सामना करना पड़े। मानवतावदावादी दृष्टिकोण अर्थात् एक सच्चे सत्याग्रही का दृष्टिकोण मानवातावादी होना चाहिए और यह तभी संभव है जब कि उसमे अहंकार न हो।[2]'' (डॉ0 अनुपम सक्सैना, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, ज्ञानदा प्रकाशन, पी0 एण्ड डी0, नई दिल्ली, वर्ष–2009, पृ0सं0 230)

सत्याग्रही का अर्थ

एक सत्याग्रही के गुण बताते हुए गांधी जी कहते है कि ''सत्याग्रही को पूर्णतः सत्य के प्रति समर्पित रहना चाहिए और उसे अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक रहना चाहिए। सत्याग्रही के मन मे किसी के प्रति कुटिल भावना नहीं होनी चाहिए। उसके लिए छल का परित्याग करके अन्दर और बाहर समान रहते हुए, कथनी और करनी में कुछ अन्तर न करके पूरी तरह आभास कराकर उसके अन्तः करण के भावों को जगाने का प्रयत्न करता है। उसका हमेशा यह प्रयास रहता है कि वह अच्छाई से बुराई को, प्रेम से क्रोध को, सत्य के द्वारा असत्य को, अहिंसा द्वारा हिंसा को जीतने का प्रयत्न करता है। सत्याग्रही को पूर्णतः अनुशासित एवं निष्ठावान रहते हुए, सत्याग्रह के मार्ग पर मिलने वाली कठिनाइयों भरी यातनाओं को सहर्ष स्वीकार करना पड़ता है। अतः गांधी जी के अनुसार सत्याग्रही को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपिरग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, निर्भयता आदि गुणों से युक्त धर्मों को समान देखने वाला तथा स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निवारण आदि गुणों से युक्त धर्मों को समान देखने वाला तथा स्वदेशी एवं अस्पृश्यता निवारण करने वाला होना चाहिए।[3]'' (वहीं, पृ0सं0 229)

ट्रस्टीशिप

गांधी जी ने अपने सत्याग्रह आन्दोलन में भारतीय परम्परा के सनातन नैतिक मूल्य 'सत्य' को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है। इसी प्रकार गांधी जी ने अपने ट्रस्टीशिप के विचार में सनातन नैतिक मूल्य 'अस्तेय एवं अपरिग्रह' को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से ट्रस्टीशिप शब्द अंग्रेजी भाषा के Trust शब्द से बना है, जिसका अर्थ है धरोहर अथवा सम्पत्ति। सामान्य रूप से कोई भी सम्पत्ति जो व्यक्तिगत स्वामित्व की है, वह ट्रस्ट में दाखिल हो सकती है, परन्तु शर्त यह है कि राज्य का कोई दूसरा कानून इसका प्रतिबन्धक नहीं बनता हो। व्यवहारिक दृष्टि से ट्रस्ट में जमीन, किसी चीज का कोष, शेयर आदि रखे जाते है। ट्रस्ट की अवधारणा जमीन और व्यवहार की अन्य सम्पत्ति को किसी के यहाँ सुरक्षित रूप से रखने के रीति–रिवाज से विकसित हुई है। अतः कोई सम्पत्ति जो किसी के स्वामित्व में हैं, वह दूसरे के नियन्त्रण में उसकी अपनी इच्छा से उसके लाभकारी उपयोग के लिए दी जाती है[4]। (तत्त्वमसि, महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, राजघाट, नई दिल्ली तथा राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–110002, वर्ष–2003, पृ0 सं0 11)

ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की विस्तारपूर्वक विवेचना करते हुए हम कह सकते है कि प्राचीन काल में अर्थ–व्यवस्था विशेष जटिल नहीं थी और हिंसा एवं परिग्रह की बात सामाजिक, आर्थिक सन्दर्भ में कम परन्तु अध्यात्मिक, धार्मिक क्षेत्र में अधिक होती थी। परन्तु आधुनिक युग में औद्योगिक क्रांति एवं तकनीकी वैज्ञानिक विकास के कारण धार्मिक अन्धविश्वास कम हुए परन्तु

आर्थिक क्षेत्र में हिंसा, शोषण आदि की गति अधिक तीव्र हुई। इसे रोकने के लिए विभिन्न राजनैतिक विचारकों एवं दार्शनिकों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किए। जिनमें कार्ल मार्क्स के विचार सबसे अधिक प्रभावशाली दिखाई देते है क्योंकि मार्क्सवाद परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य–इन तीनों संस्थाओं के निर्मूलन के लिए अपनी व्यूह रचना का निर्माण करता है अर्थात् व्यक्तिगत स्वामित्व को समाज या राज्य के स्वामित्व में बदलना ही उसका लक्ष्य है। लेकिन मार्क्स से पहले वर्द्धमान महावीर ने भारत में व्यक्तिगत स्वामित्व बदलने का नहीं, अपितु स्वामित्व और सम्पत्ति का अस्वीकार करने का दर्शन दिया क्योंकि सच्चे सुख एवं शान्ति का मूलाधार यही हो सकता है कि स्वामित्व के इस विसर्जन में आवश्यकता की वृद्धि नहीं होती और माँग की भी सीमा हो जाती है। अपरिग्रह के द्वारा इच्छाओं पर स्वैच्छिक और मानसिक नियन्त्रण रहता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब तक स्वामित्व बना रहता है, चाहे वह व्यक्तिगत हो, चाहे समाजगत, चाहे राष्ट्रगत, उसमें संघर्ष होता रहता है, इसलिए अपिरग्रह का विचार स्वामित्व रूपान्तर का नहीं, उसके विसर्जन का एक उपाय है। भगवान महावीर ने सम्पत्ति के विसर्जन की भावना को पुष्ट करने के लिए दो धर्मों की प्रतिष्ठा की थी अर्थात् अनागार एवं आगार जिसमें अनागार धर्म के धारक श्रमण होते थे जो नितांत अपरिग्रही होते थे, जबकि गृहस्थ लोग आगारी होते थे जो सम्पत्ति अर्जन में अपनी इच्छा और आवश्यकता को मर्यादा में रखते थे अर्थात् मर्यादा से अधिक प्राप्त सम्पत्ति को वे अपनी नहीं बल्कि समाज की सम्पत्ति मानकर जनकल्याण में उसका उपयोग करते थे। इस प्रकार गृहस्थ के जीवन में अर्जन के साथ विसर्जन की भी अद्भुत प्रक्रिया का समावेश हमें जैन दर्शन में मिलता है। अर्जन एवं विसर्जन की यह प्रक्रिया समतावादी समाज का मुख्य आधार है। इसलिए यदि अपरिग्रह की भावना को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के स्तर पर व्यवहार में लाया जा सके, तो विश्व को तनावों से मुक्त किया जा सकता है। वस्तुओं का संग्रह परिग्रह नहीं है, उनपर स्वामित्व और उसके प्रति आसक्ति परिग्रह है। उसी प्रकार विचारों का बाहुल्य और वैविध्य परिग्रह नहीं, परन्तु उनके प्रति आग्रह और कदाग्रह परिग्रह है। व्यापक दृष्टि से विचार करने पर तो यह ज्ञात होता है कि वस्तु की भांति अपना शरीर भी परिग्रह है। वस्तु अथवा धन का यह जो संग्रह है, उसके दो मूल हेतु संरक्षण एवं शोषण है क्योंकि संरक्षण वृत्ति में परिग्रह और न्याय नीति पूर्व धन का उपार्जन किया जा सकता है और उसका दुर्व्यसनों में उपयोग न होने के बाद आवश्यकता की पूर्ति के बाद भी धन बचा रहता है[5]। (वहीं. पृ0 सं0 19–20)

आर्थिक दर्शन की दृष्टि से ट्रस्टीशिप

उत्पादन के बहुत से साधनों का उपयोग करने से धन में गुणाकार वृद्धि होती है। इस संरक्षण–वृत्ति के लोग इस प्रकार से अर्जित धन का उपयोग शिक्षा और सुरक्षा तथा स्वास्थ्य जैसे लोकोपयोगी कार्य में करते हैं, परन्तु जिनकी वृत्ति संरक्षण की न होकर शोषण की होती है वे येन–केन–प्रकारेण अधिकाधिक संग्रह करने को बेताब रहते हैं। उनका धन न अपने लिए और न समाज के लिए उपयोग में आता है, बल्कि उनका धन ढोंग, प्रदर्शन, दुर्व्यसन, फैशनपरस्ती और विलासिता में जाता है। अपरिग्रह का विचार वास्तव में ममत्व विसर्जन की एक कला है। अपरिग्रह ट्रस्टीशिप का ही पर्याय है अर्थात् हम यह माने कि जो हमारे आस–पास है, वह अमानत है, हमें इसका अनासक्त उपयोग करना है। परिग्रह के दो भेद है एक अन्तरंग तथा दूसरा बहिरंग जिसमें अन्तरंग भाव–परिग्रह को कहते है, जबकि बाह्य सहयोगी पदार्थ का सम्बन्ध बहिरंग परिग्रह कहलाता है। बहिरंग परिग्रह अन्तरंग परिग्रह का एक निमित्त है। जबकि अपरिग्रह स्व की अनुभूति है। स्थूल अर्थ में अपरिग्रह का अर्थ होता है, संग्रह नहीं करना, परन्तु वास्तविक अर्थ में अपरिग्रह अपने लिए पर की आवश्यकता न रखना है। जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी अपरिग्रह की साधना की गई है। जैसे भारतीय संस्कृति में तो अपरिग्रह को सद्गुण के रूप में देखा ही गया है। पतंजलि ने अपरिग्रह की परिभाषा करते हुए कहा है कि जब मनुष्य का चित्त किसी वस्तु की प्राप्ति के प्रति उदासीन हो जाता है तो वह अपरिग्रह कहलाता है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार परिग्रह की भावना में दम्भ और आसक्ति एवं स्वामित्व की भावना रहती है। श्रीमदभगवद्गीता में आसक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसके अनुसार संग्रह बुरा नहीं है, अपितु संग्रह की आसक्ति बुरी है। बौद्ध धर्म के अष्टांग मार्ग में सम्यक कर्मान्त और उसके पंचशील में अपरिग्रह पर जोर दिया गया है। ईसाई धर्म में भी अपरिग्रह की बात कही गयी है। ईसा मसीह के अनुसार– कोई दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता, क्योंकि वह एक से वैर और दूसरे से प्रेम रखेगा। वह एक से मिला रहेगा तथा दूसरे से अलग रहेगा अर्थात् मनुष्य परमेश्वर एवं धन, दोनों की सेवा एक साथ नही कर सकता क्योंकि जहां तुम्हारा धन है वही तुम्हारा मन भी लगा रहेगा। किसी का जीवन उसकी सम्पत्ति बाहुल्यता से नहीं नापा जा सकता। प्रभु ईसा आगे कहते है कि जो मनुष्य अपने लिए धन बटोरता है, वह परमेश्वर की दृष्टि में धनी नहीं है। परमेश्वर में राज्य में धनवान के प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सूई की छेद से निकल जाना अधिक सरल है। अतः ईसाई धर्म अपरिग्रह की साधना का धर्म है[6]। (वहीं, पृ0 सं0 21)

इस्लाम धर्म में ट्रस्टीशिप

इस्लाम धर्म में भी कहा गया है कि दुनिया की खेती से आखिरत की खेती कहीं अधिक मूल्यवान है। मोहम्मद साहब कहते है कि जो अल्लाह से प्रेम का दावा करता है, अकिंचन स्वयं उसके पास चली आती है। पैगम्बर मोहम्मद साहब खुद अकिंचन, अपरिग्रही और निर्गन्ध थे। उन्होंने धन–संग्रह को भी कभी बढ़ावा नहीं दिया। उन्होंने हमेशा जकात, सदाकत और दान देने का उपदेश दिया। जकात के अनुसार हर मुसलमान को अपनी सालाना आमदनी का चालीसवां हिस्सा गरीबों को खैरात में देना आवश्यक माना गया है। कुरान–शरीफ के अनुसार जो नमाज कायम करते है और जकात देते हैं, वे ऐसे है जो आखिरत पर विश्वास करते है। सुरे इब्राहीम में कहा गया है कि हमने जो दिया है, उसमे से छिपाकर और खुले रूप से खर्च करे। इसके अलावा कहा गया है कि अल्लाह के दिए धन में से अल्लाह के बन्दों के लिए जो धन नहीं निकालता है, उसका धन नापाक रहता है

और मन एवं आत्मा की शुद्धि नहीं हो पाती है। इसी तरह सुरे–अलवकर, सुरे अलतोबा, सुरे अल–इमरान आदि में अपरिग्रह और दान का महत्व बताया गया है। इस्लामी अर्थव्यवस्था में धन–संग्रह में संयम और उचित साधनों का उपयोग करने की सलाह दी गई है। पैगम्बर साहब ने माले ग़नीमत को तस्लीम करते हुए, एक हिस्सा अविवाहित और दो हिस्सा विवाहित को देने का उपदेश दिया है। अतः इस्लामी अर्थव्यवस्था न्याय एवं सन्तुलन पर आधारित है। इस्लाम में सम्पत्ति एकत्र करना अनुचित माना गया है[7]। (वहीं, पृ0 सं0 21)

इनके अलावा अपरिग्रह समाजवादी समाज रचना का आदर्श है और यह वर्तमान युग की आवश्यकता है। अस्तेय एवं अपरिग्रह प्रायः साथ–साथ प्रयुक्त किये जाते। अपरिग्रह का सामान्य अर्थ है कि अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु नहीं रखना, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ है कि अपनी आवश्यकता की वस्तु जो मैं रखता हूँ, वह अपने स्वामित्व के लिए नहीं रखता हूँ। जैसे शरीर पर भी अपना स्वामित्व नहीं होना चाहिए। यह शरीर समाज की धरोहर है। शरीर धर्म का साधन है। अपरिग्रह को समझने के लिए गांधी जी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को अच्छी तरह से जानना होंगा। गांधी जी के अनुसार ट्रस्टीशिप का अर्थ है कि तुम्हारे पास जो धन है, वह धन समाज का है। गांधी जी ने इसी आदर्श को हमारे सामने रखा है जिसे संस्कृत में 'तेन त्यक्तेन भुजीथाः' कहा जाता है। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त कोई गगनविहारी दर्शन न होकर एक व्यावहारिक दर्शन है। वास्तव में अपरिग्रह की साधना के बिना ट्रस्टीशिप का पालन हो ही नहीं सकता। अपरिग्रह का सीधा–सादा अर्थ है–निरीहता अथवा आसक्ति–रहित होना। इस दृष्टि से अपरिग्रह की पाँच विशेषताएँ हैं :–

इच्छाओं का नियन्त्रण

मनुष्य की इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं। इच्छाएँ सीमित होंगी तो चिन्ता और अशान्ति भी कम होगी। इच्छाओं को नियन्त्रित करने के लिए वर्द्धमान महावीर 'इच्छा परिमाण व्रत' और गांधी जी ने 'सादा जीवन' पर बल दिया था।

साधनों के स्वामित्व का विसर्जन

जीवन के साधन प्रकृति द्वारा प्रदत्त है और हम सभी प्रकृति की संतान है। इसलिए जीवन के साधनों में सब समान हिस्सा रखते हैं और कोई स्वामी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति संरक्षक है, जो अपने योग्य सीमित साधन लें, शेष औरो के लिए छोड़ दें, विसर्जित कर दें। गांधी जी ने महावीर के स्वामित्व–विसर्जन की कल्पना को ही ट्रस्टीशिप का रूप दिया है।

शोषणमुक्त समाज की स्थापना

परिग्रह भी शोषण का ही एक रूप है, जहाँ विषमता और शोषण का विष समाप्त हो जाता है, वहीं अपरिग्रह और स्वामित्व–विसर्जन आता है। महावीर ने छोटे–छोटे उद्योगों को अपने दर्शन में स्थान दिया और इसलिए 'इच्छा परिमाण व्रत' को महत्वपूर्ण स्थान दिया। गांधी जी एवं विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन के पीछे भी यही भाव था।

निष्काम बुद्धि से अपने साधनों का जनहित में उपयोग

वास्तव में जो अभाव है, वहीं दुनियां में सबसे बड़ा पाप है। जब अभाव होता है, तो पीड़ित मानव कुछ का कुछ कर गुजरने को तैयार रहता है। वर्द्धमान महावीर के अनुसार जो सम्पत्ति का अपने पड़ोसियों में विभाजन नहीं करता है, वह मोक्ष नहीं पा सकता। इसीलिए वैदिक परम्परा में 'दान', इस्लाम में 'जकात' आदि का विधान है। शंकराचार्य ने तो 'दान संविभाग' कहकर सम्यक् वितरण को प्रोत्साहन दिया है। आज संसार में जितने द्वन्द्व, संघर्ष एवं असन्तोष है, उनके मूल में असंविभाग है। मानव एवं मानव के बीच के संघर्ष का कारण यहीं है। विनोबा भावे का 'भूदान यज्ञ' वस्तुतः इसी प्रकार का संविभाग था और इसलीए यह ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का प्रायोगिक रूप भी कहा जा सकता है। आज की राष्ट्रीय परिस्थिति का यदि अवलोकन करें तो लगेगा कि क्षेत्रीय–विषमता के कारण आज देश में क्षेत्रवाद बढ़ रहा है।

भौतिक एवं आध्यात्मिक शुद्धि

मानव जीवन को भौतिक एवं आध्यात्मिक दो टुकडों में नहीं बांटा जा सकता है क्योंकि किसी भी अर्थव्यवस्था के दो पक्ष होते है एक पूँजी तथा दूसरा श्रम। महावीर एवं गांधी जी ने मानव श्रम को बहुत महत्त्व दिया है। इसलिए अपरिग्रह को समाज रचना का भारतीय आदर्श मानना चाहिए। ट्रस्टीशिप की व्यवस्था में अपरिग्रह की भावना मूल आधार है, उसमें सम्पत्ति–अपहरण का कोई स्थान नहीं है। इसमें मालिकी को समाप्त करना आवश्यक है, मालिकों को नहीं। संग्रह की मनोवृत्ति के कारण शोषण, क्रूर व्यवहार आदि भावनाएँ विकसित होती हैं और इनके फलस्वरूप मनुष्य में विषमता विकसित होती है। विकारों के मूल में इच्छा या तृष्णा होती है। परिग्रह से ही तृष्णा की तृप्ति होती है। परिग्रह मूर्च्छा अर्थात् आसक्ति का नाम है। वस्तु या व्यक्ति के प्रति आसक्ति के क्षणों में चेतना मूर्च्छित रहती है, इसमें ज्ञानज ताटस्थ्य नहीं रहता, वस्तु और व्यक्तियों के प्रति चिपकाव की मनोदशा में स्वतन्त्र बुद्धि सोच–विचार कर कार्य बन्द कर देती है। इस प्रकार आसक्ति त्याग ही अपरिग्रह का मनोवैज्ञानिक आधार है, जिसके आधार पर समाज अभियान्त्रिकी के रूप में ट्रस्टीशिप की कल्पना का अविर्भाव माना जाना चाहिए। यदि मूर्च्छा–परित्याग आध्यात्मिक या मनोवैज्ञानिक अभियन्त्रणा है तो ट्रस्टीशिप सामाजिक अभियन्त्रणा है[8]। (वहीं, पृ0सं0 22–23)

अपरिग्रह का समाजशास्त्र आधुनिकता का समाजशास्त्र है जिसमें सामाजिक सत्य तथा सामाजिक विकास की आधुनिकतापरक व्याख्याएँ पारम्परिक अपरिग्रही सामाजिक अवधारणाओं से नितांत भिन्न है। वर्तमान युग ने धर्म तथा अध्यात्म की रहस्यात्मक सत्य विषयक अनुभूतियों तथा धारणाओं को पुराणपंथी ढकोसला मानकर अस्वीकार कर दिया था तथा ज्ञान की तार्किक–वैज्ञानिक विधि के रूप में एक जैसी विधि का सूत्रपात किया था और इसी से प्रौद्योगिकी का वर्तमान विकास भी सम्भव हुआ। वर्तमान समाजशास्त्र का सूत्रपात भी इसी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में हुआ था, जिसका उद्देश्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न सामाजिक दोषों तथा कुरीतियों का वैज्ञानिक विधियों द्वारा अध्ययन कर उनका निराकरण करना था, जिसमें अगस्त काम्पते,

कार्ल मार्क्स, दुर्खाइम आदि अनेक समाजशास्त्रियों की सिद्धान्त रचनायें एवं व्याख्याएँ आती है। परन्तु इन समाजशास्त्रिय सिद्धान्तों में सत्य के तथा व्यक्ति एवं समाज के विकास के सम्प्रत्ययों में अपरिग्रह या स्वैच्छिक परिग्रह–त्याग का स्थान नहीं है क्योंकि वहाँ विकास की अवधारणा एक आयामी बर्हिमुखी आर्थिक–तकनीकी प्रगति की है, मनुष्य की आत्मोन्नति तथा समाज की उस चैतन्यात्मक मूल्यात्मक प्रगति की अवधारणा नहीं है।

इस प्रकार अपरिग्रह जैसे मूल्य का ऐसे समाजशास्त्र में समुचित स्थान सम्भव है, जहाँ कि बर्हिमुखी यान्त्रिकता के स्थान पर मानव की चैतन्यात्मक प्रतिष्ठा अधिक मुखरित हो। किन्तु भारत में पारम्परिक चिन्तन उपनिषद् काल से बुद्ध–महावीर एवं गांधी–विनोबा तक अपरिग्रह को जीवन एवं समाज–व्यवस्था का मूल्य माना गया है। वास्तव में यह मूल्य का प्रश्न है। भौतिकवादी यान्त्रिक जीवन में अपरिग्रह अप्रासंगिक दीखता है, यही कारण है कि समाजवाद एवं साम्यवाद स्वैच्छिक अपरिग्रह पर नहीं बल्कि संगीन की नोक एवं राजदण्ड के आधार पर ही खड़ा रह सकता था। आज 60–70 वर्षों के बाद इसकी विसंगतियाँ एवं विरोधभास सोवियत व्यवस्था में प्रकट हो चूके हैं। वास्तव में व्यक्तिवाद और परिग्रहवाद पूँजीवाद के साथ तो चल सकता है, किन्तु समाजवाद एवं साम्यवाद के साथ असम्भव है। इसीलिए गांधी जी एवं विनोबा भावे जी ने साम्ययोगी व्यवस्था के लिए 'स्वैच्छिक अपरिग्रह' की बात को इतना महत्त्व दिया। परिग्रहपूर्ण जीवन एवं समाज–व्यवस्था में परिग्रहशमन के लिए निरंकुश तानाशाही अनिवार्य है, ठीक इसी प्रकार समाजवाद एवं साम्यवाद अथवा सर्वोदय के लिए अपरिग्रह अनिवार्य है।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र में गांधी जी के नैतिक विचारों को मानवतावादी दर्शन में समायोजित करने का प्रयास किया गया है। इसमें बताया गया है कि गांधी जी के विचार केवल और केवल नैतिक मानववाद में ही ठीक बैठतें है। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त भी पूर्ण रूप से नैतिक मूल्यों अपरिग्रह एवं अस्तेय पर आधारित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मो0 क0 गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अनुवादक–काशीनाथ त्रिवेदी, सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–221001, वर्ष–जनवरी, 2012, पृ0सं0 173*
2. *डॉ0 अनुपम सक्सैना, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, ज्ञानदा प्रकाशन, पी0 एण्ड डी0, नई दिल्ली, वर्ष–2009, पृ0सं0 230*
3. *वहीं, पृ0सं0 229*
4. *तत्त्वमसि, महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, राजघाट, नई दिल्ली तथा राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–110002, वर्ष–2003, पृ0 सं0 11*
5. *वहीं. पृ0 सं0 19–20*
6. *वहीं, पृ0 सं0 21*
7. *वहीं, पृ0सं0 22–23*
8. *मो0 क0 गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अनुवादक–काशीनाथ त्रिवेदी, सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–221001, वर्ष–जनवरी, 2012.*
9. *हृदय नारायण मिश्र एवं जमुना प्रसाद अवस्थी, नीतिशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, वर्ष –1988.*
10. *डॉ0 भीखनलाल आत्रेय, भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, वर्ष –1964.*
11. *डॉ0 ओमप्रकाश पाण्डेय, एवं डॉ0 अभय कुमार पाण्डेय, महात्मा गांधी का सर्वोदय, भारती प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2015*
12. *डॉ0 सुनील कुमार प्रियवच्चन, महात्मा गांधी (प्रारम्भ से दक्षिण अफ्रिका तक), भारती प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2016*
13. *डॉ0 ओमप्रकाश पाण्डेय, महात्मा गांधी का स्वराज्य, भारती प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2017*